Golden Research Thoughts
ISSN 2231-5063
Impact Factor : 2.2052(UIF)
Volume-3, Issue-9, March -2014 Available online at www.lbp.world

ध्यान का मानव शरीर पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव का अध्ययन

कु. कीर्ति जौहरी, डॉ. एस.एस. शर्मा
शोधार्थी[1] , देवी अहिल्या विश्वविद्यालय , इन्दौर., म. प्र.
प्राध्यापक[2], योग, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय , इन्दौर., म. प्र.

सारांश –

प्रस्तुत शोध पत्र में ध्यान की परिभाषा सहित विभिन्न ग्रंथों में ध्यान के प्रकार उपयोगिता और उसके द्वारा मानव के शरीर पर होने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभावों का अध्ययन किया गया है।

ध्यान –

ध्यान के लिए मुख्यतः तीन बातें प्रेक्षित हैं – व्याता, ध्येय और ध्यान। व्याता अर्थात् ध्यान करने वाला, ध्येय अर्थात् ध्यान का विषय और ध्यान अर्थात् चित्त की वह वृत्ति जिसके द्वारा ध्यान किया जाता है। इन तीनों के होने का नाम त्रिपुटी है। जब चित्त को किसी विषय पर ठहराया जाता है तो चित्र की वह विषयाकार वृत्ति त्रिपुटी सहित होती है। आत्मा, आत्मा के द्वारा आत्मा का ही ध्यान करता है। अन्य ग्रंथों में ध्यान के प्रकारों के विषय में भिन्न-भिन्न मत हैं।

योगसिद्धन्तचन्द्रिका :

इसमें ध्यान के दो भेद बताए गए हैं :

सगुण ध्यान निर्गुण ध्यान। सगुण ध्यान :

राम, कृष्ण आदि कला युक्त विग्रहों का ध्यान सगुण ध्यान कहलाता है। योग- सिद्धन्तचन्द्रिका में सगुण ध्यान के विषय में कहा गया है कि साधक नील कमल की पंखुड़ी के समान श्याम वर्ण (रंग) वाले, पीले रेशमी वस्त्र धारण करने वाले, शंख चक्र, गद्दा, पदम् आदि से सुशोभित, चतुर्भुजा वाले तथा करोड़ों तारों के तुल्य देदीप्यमान एवं अविनाशी भगवान् विष्णु का ध्यान करे। इसी प्रकार साधक ज्ञानदाता, कल्याणकारी तथा स्फटिकमणि के समान स्वच्छ, वर्ण वाले देवादिदेव महेश्वर का और महादेवादि से भी श्रेष्ठ अर्थात् सर्वश्रेष्ठ, अविनाशी, नीलकण्ठी एवं समस्त पापों के नाशक ब्रह्मा, सूर्य, गणेश, शक्ति, श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि सभी देवता एक ही हैं। केवल इसके रूप पृथक्-पृथक् हैं। भिन्न रूप वाले होने पर भी इसकी उपासना से प्राप्त होने वाला सत्य एक ही है।

घेरण्ड संहित

घेरण्ड संहिताकार ने ध्यान के तीन प्रकार बताये हैं :-

१.स्थूल ध्यान :

जिसमें मूर्तिमान राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, बह्म, गणेश, हनुमान या अन्य किसी देवी-देवता आदि का अथवा अपने किसी ईष्टदेव या गुरू की मूर्ति का चिंतन किया जावे, उसे आंतरिक चक्षुओं से देखने का प्रयास किया जाये, वह स्थूल ध्यान कहलाता है।

२.ज्योर्तिध्यान :

मूलाधार में सर्पाकार रूपिणी कुण्डलिनी है। यही दीपक की लौ के रूप में आत्मा का निवास है। यहाँ तेजोमय परात्पर ब्रह्म का ध्यान करना ही तेजोध्यान, अर्थात् जोर्तिध्यान है। महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि प्रकाश से पूर्ण असीम सत्ता, परमात्मा या आत्मा पर जो ध्यान किया जाता है, उसे तेजोध्यान या ज्योर्तिध्यान कहते हैं। उसके

अनुसार मूलाधार में सर्प आकृति में कुण्डलिनी शक्ति सोई पड़ी है और उसी स्थान में दीपक की लौ के रूप में मनुष्य की आत्मा का निवास है।

इस ध्यान का संकेत ध्यान बिन्दुपनिषद् और श्वेताश्तरोपनिषद् में भी मिलता है। इस ध्यान से योगसिद्धी की शक्ति प्राप्त होती ळें

३.सूक्ष्म ध्यान :

स्थूल ध्यान से ज्योर्ति ध्यान सौ गुना श्रेष्ठ है और ज्योति ध्यान से सूक्ष्म ध्यान लाख गुना विशिष्ट है। वास्तव में सूक्ष्म ध्यान ही ध्यान योग की अंतिम अवस्था है। इसमें साधक को मोक्ष की प्राप्ति निहित है। जिसमें बिन्दुमय ब्रह्म कुण्डलिनी शक्ति का चिंतन किया जाता है, वही सूक्ष्म ध्यान है। बड़ी कठिन तपस्या और अभ्यास से साधक कुण्डलिनी शक्ति को जगाने में सफल होता है। जब यह कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर आत्मा के साथ मिलकर नेत्ररन्ध्र मार्ग से निकलती हुई उर्ध्वभाग में स्थित राजमार्ग नामक स्थल में परिभ्रमण करती है, तब उसकी सूक्ष्मता और चंचलता के कारण ध्यान योग में उसे देखना कठिन होता है। योगी शाम्भवी मुद्रा का अनुष्ठान करता हुआ, इस कुण्डलिनी का ध्यान करे, इसी का नाम सूक्ष्म ध्यान है।

भक्तिसागर –

भक्तिसागर में ध्यान के चार प्रकार निर्दिष्ट है।

१.पदस्थ ध्यान :

पदस्थ ध्यान का अर्थ है, पदों पर ध्यान केन्द्रित करना। इस ध्यान के द्वारा साधक अपने को बार-बार एक ही केन्द्र पर स्थिर करता है। पद का अर्थ यहाँ चरण या पैर से सिर तक के अंगों का ध्यान किया जाता है। एक बार ध्येय वस्तु के रूप को देख कर आँखों को बंद करके उस वस्तु के रूप की सिर से पैर तक की छवि को चित्तवृत्तियों द्वारा ग्रहण करते हैं। बाद में प्रणव जाप करते हुए कुम्भक करके चित्र को ध्येय वस्तु के चरणों में केन्द्रित करते हैं। चरणों में केन्द्रित करने के कारण इसका नाम पदस्थ ध्यान है। भक्तियोग में विशेषकर पदस्थ ध्यान का आश्रय लिया जाता है।

२.पिंडस्थ ध्यान :

पिण्ड का अर्थ है – शरीर और पिण्डस्थ का अर्थ हुआ शरीर में स्थित। इसके अंतर्गत यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और धारणा द्वारा शुद्ध हुए चित्र को शरीर के विभिन्न भागों में स्थित चक्रों पर केन्द्रित करते हैं। यह चक्र कलम के पुष्प के आकार के होते हैं। यह क्रमशः मूलाधार, उपस्थ, नाभि, हृदय, कंठ, भूमध्य तथा ब्रम्हरन्ध्र में हैं। इनका ध्यान मूलाधार से ऊपर को और भूमध्य तक क्रमशः करना चाहिये। चित्त को एकाग्र करके सभी छः चक्रों का क्रम से इस प्रकार ध्यान करना चाहिए कि वे पुष्प बंद अवस्था में हैं तथा उल्टे होकर स्थित है। ध्यान द्वारा यह पुष्प धीरे-धीरे सीधे होते जा रहे हैं तथा साथ ही खिलने जा रहे हैं। जब यह पुष्प्प खुल जाये तो देवता, पंखुड़ियों, मन्त्र, तत्व तथा फल सहित इसका ध्यान करना चाहिए। भूमध्य तक पहुँचने के बाद फिर ऊपर से चेतना को उल्टे क्रम से घुमाने हुए पुनः प्रथम स्थान मूलाधार पर वापस ले आए। इसी तरह बार-बार अभ्यास करें। इसके दृढ़ अभ्यास से चक्रों के सही स्थान का ज्ञान होगा और चक्र जागृत होंगे अर्थात् चक्रों का भेदन होगा। अंत में ब्रम्हरन्ध्र में ध्यान की केन्द्रित कर दें। इसके अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है और सुषुम्ना का मार्ग खुल जाता है।

३.रूपवस्थ ध्यान :

इस ध्यान के अंतर्गत भृकुटी अर्थात् भूमध्य में निश्चल होकर चित्त को स्थिर करना होता है। फलस्वरूप पहले अग्नि स्वरूप फल दिखाई देता है, शनैः-शनैः ज्योति के दर्शन होते हैं। यह दिव्य ज्योति दीपमालिका में बदल जाती हैं। और क्रमशः तारों की माला के रूप में करोड़ारें सूर्य-चन्द्रमा के रूप में दिखाई पड़ती है जिसके प्रकाश में सारा संसार झिलमिल करता-सा प्रतीत होता है। घेरण्ड ऋषि ने इसे ज्योर्तिध्यान कहा है।

४.रूपातीत ध्यान :

यह रूपस्थ ध्यान से भी उच्चतर अवस्था है। रूपातीत ध्यान का अर्थ है- रूप-रंग, में से अतीत, निरंजन, निराकार शरीरी आनंद स्वरूप ब्रम्ह का चिंतन करना, स्मरण करना। इसमें साधक अपने ध्येय को एक बिन्दु में समाहित कर लेता है। यहाँ वह ध्येय को भूलकर मन को ब्रम्हरूप में आठों पहर के लिए एकाग्र तथा निश्चल होकर लगाता है अर्थात् इस अवस्था में ध्यान और ध्येय एक रूप हो जाते हैं। यही ध्यान की अंतिम स्थिति तथा समाधि की शुरूआत है।

ध्यान की उपयोगिता :

ध्यान मुख्यतया अक्रिया की साधना है। मन का स्वरूप क्रिया है, जिसका कारण उसकी विभिन्न वृत्तियाँ हैं। शरीर तथा मन की क्रियाओं का निरोध कर उसे किसी एक केन्द्र पर स्थिर कर देना 'ध्यान' है तथा इस केन्द्र को भी विस्मृत कर केवल चेतन्य में स्थित करना ही 'समाधि' है। यही आत्मानुभूति की स्थिति है जो ध्यान की अंतिम उपलब्धि है किंतु ध्यान के आरंभ से ही। मनुष्य को कई लाभ प्राप्त होना आरंभ हो जाते हैं। इससे मन की एकाग्रता होती है जिससे कर्म में श्रेष्ठता आती है, कर्म में आनंदानुभूति होती है, कर्म और जीवन का सामंजस्य स्थापित होता है, मनोविकार दूर होता है, सामाजिक सामंजस्य स्थापित होता है। जीवन की कई समस्याओं का निदान स्वतः हो जाता है, धीरे-धीरे समष्टि में एकत्व का अनुभव होने लगता है तथा विश्व बंधुत्व की भावना का उदय होता है। जिसकी अंतिम उपलब्धि आत्मबोध के रूप में होती है।

दुनियां के चिकित्सा जगत् में आज कई प्रकार की चिकित्सा पद्धतियाँ प्रचलित हैं जिनमें आज एलोपैथी का सर्वाधिक प्रचार व प्रसार हुआ है। अन्य विधियाँ, आयुर्वेद होम्योपैथी, यूनानी, प्राकृतिक चिकित्सा, मानसिक चिकित्सा, तंत्र, मंत्र, टोने-टोटके, प्रेत चिकित्सा, झाड़-फूँक आदि के द्वारा भी रोगोपचार किये जाते हैं। किंतु इतना होते हुए भी बीमारियाँ निरंतर बढ़ती जा रही हैं एवं उग्ररूप धारण कर रही है जिनमें हृदय रोग, रक्त चाप, अस्थमा, एड्स, कैन्सर, कब्ज, अनिन्द्रा, कोलाईट्स आदि मुख्य हैं। छोटी-मोटी बीमारियों का तो कोई हिसाब ही नहीं है। इन पर नियंत्रण पाना कठिन हो रहा है।

क्या इन पर नियंत्रण पाया जा सकता है? ऐसे कई प्रश्न आज चिंतन का विषय बने हुए है किंतु परिणाम कुछ नहीं निकल रहा है। एक प्रश्न और भी है कि क्या मनुष्य बिना किसी दवा के स्वस्थ्य रह सकता है तथा बिना दवा के क्या किसी असाध्य बीमारी का इलाज सम्भव है? तो सामान्य व्यक्ति का यही उत्तर होगा कि ऐसा संभव नहीं है। बीमारी शरीर का गुण है तथा शरीर रोगों का घर हैं। उसको बीमारी होगी ही तथा उसका इलाज भी करवाना ही पड़ेगा वरना मनुष्य रोगी रह कर अल्पायु में ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर देगा। हमारे मनीषियों ने जो शतायु जीवन की कामना की थी, क्या वह कोरी कल्पना थी अथवा उसे प्राप्त किया जा सकता है? इन दोनों प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिए हमें अध्यात्म जगत् में जाना पड़ेगा तथा यह सोचना पड़ेगा कि ईश्वर ने सृष्टि बनाई, मनुष्य को बनाया तो उसकी क्या मुंशा थी? क्या ये दुःख और बीमारी ईश्वर की देन है। अथवा मनुष्य की भूलों का परिणाम है?

यदि ये ईश्वरीय देन है तो फिर सभी उपचार विधियाँ व्यर्थ हो जाती हैं। तो उन्हें किस प्रकार सुधारा जाये कि वह सदा निरोग रहे और यदि रोग हो जाये तो उसका किस विधि से इलाज किया जाये कि जिससे नई बीमारियाँ फिर उत्पन्न ही न हो। ध्यान साधना अपनी मनःशक्ति के केन्द्रित करने की साधना से आरंभ होती है। जब मन स्थिर हो जाता है तो इसके अद्भुत परिणाम सामने आते हैं। मन की अभिव्यक्ति विचारों के माध्यम से होती है। जब मन को एकाग्र करके कोई विचार प्रकट किया जाता है कि उसके चमत्कारिक परिणाम दिखाई देते हैं। संकल्प चित्त का गुण है। मन स्थिर हो जाने पर उनका संबंध चित्त से हो जाता है जिसकी शक्ति मन से कई गुणा अधिक है। चित्त का संकल्प सब करने में समर्थ है। वह सृष्टि के भौतिक पदार्थों में परिवर्तन भी ला सकता है। चित्त की इसी संकल्प शक्ति के जागृत हो जाने पर व्यक्ति असाध्य एवं लाइलाज बीमारियों का उपचार भी कर सकता है।

ध्यान योग चिकित्सा पूर्णतः एक आध्यात्मिक चिकित्सा है जो मनोचिकित्सा से सर्वथा भिन्न प्रकार की है। इस चिकित्सा विधि को समझने के लिए सर्वप्रथम मनुष्य की आध्यात्मिक शरीर रचना को समझना आवश्यक है। जिससे व्यक्ति इसे केवल चमत्कार ही न समझ कर वैज्ञानिक स्वरूप को भी जान सके। ध्यान की चिकित्सा मानसिक चिकित्सा तथा भाव तल की चिकित्सा की प्रक्रिया है जिसका संबंध सूक्ष्म शरीर एवं कारण शरीर से है। यही

आध्यात्मिक चिकित्सा है। इसमें मनुष्य के अचेतन मन को टटोला जाता है। जब इस ग्रन्थि का पता लग जाता है तो ध्यान साधना अपनी शक्ति का उस पर प्रहार करके उसे नष्ट कर दिया जाता है। जिससे रोगी रोग मुक्त हो जाता है। एक बार जब यह अचेतन की ग्रन्थि खुल जाती है तथा उसका बीज ही नष्ट कर दिया जाता है तो वह बीमारी हमेशा के लिए नष्ट हो जाती है तथा अगले जन्म में भी अपना प्रभाव नहीं दिखा सकती। बीज के नष्ट होने पर इस जन्म में दबी हुई ग्रंथि अगले जन्म में भी फिर प्रकट होकर रोगों को उत्पन्न कर सकती है। जिन बिमारियों की अनुवांशिकी कहा जाता है, उनमें से कई स्वयं की ही पूर्व जन्म की पाली हुई बीमारियाँ होती है जो बीज रूप में सूक्ष्म शरीर में विद्यमान रहती हैं।

बीमारी का मूल कारण अध्यात्म विज्ञान मानिसक ग्रन्थियों को मानता है जिनकी खोज न करने के कारण डॉक्टर कई बीमारियों को असाध्य घोषित कर देते हैं। यदि इनका कारण ज्ञात हो जाये तथा इन ग्रन्थियों के खोलने की कला ज्ञात हो जाये तो कोई भी रोग असाध्य नहीं रहेगा। इन मनोग्रन्थियों को जानने का कार्य 'ध्यान' में सम्पन्न किया जा सकता है जो एक आध्यात्मिक साधना है।

मन पर ध्यान का प्रभाव :

मनुष्य की शारीरिक शक्ति की अपेक्षा उसका मन कई गुना शक्तिशाली होता है। जिसका मन दुर्बल है, वह शारीरिक दृष्टि से बलिष्ठ होने पर भी पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं करता। दुनियां में कई महान् एवं महत्वपूर्ण कार्य मानसिक शक्ति को प्रबलता से ही हुए है। मन मजबूत होने पर शरीर भी उसका साथ देता है। शरीर पोषण से मांस और रक्त ही बढ़ता है किंतु इससे वह मानसिक सबसे शक्तिवाली नहीं हो जाता है।

मन का शरीर पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। शरीर की समस्त क्रिया प्रणाली मन के द्वारा ही संचालित एवं नियंत्रित होती है। यदि मन को परिवर्तित कर दिया जाये तो उससे शरीर में आश्चर्यजनक परिवर्तन दिखाई देने लगते हैं। यदि मन की बाह्य वृत्तियों का निरोध कर दिया जाये तो वह अंतर्मुखी होकर आत्मिक शक्ति के जागरण का माध्यम भी बन सकता है। इसलिए उपनिषदों में कहा गया है कि ''यह मन ही मनुष्य के बंधन एवं मुक्ति का कारण है। जब यह विषयासक्त होता है तो वह बंधन का कारण बनता है तथा निर्विषय होने पर यही मुक्ति का कारण हो जाता है।'' मन समस्त शरीर, इन्द्रियों, भावनाओं, इच्छाओं, वासनाओं आदि को नियंत्रित करने वाला है। यह जिस ओर जाता है तथा जिस वस्तु की चाहना करता है, जिसकी कामना करता है, शरीर की प्राण ऊर्जा उसी ओर प्रवाहित होने लगती है। इस ऊर्जा प्रवाह के कारण शरीर का वह अंग अधिक सक्रिय हो जाता है तथा शरीर की संपूर्ण शक्ति उसी ध्येय की पूर्ति में लग जाती है जिससे उस कार्य को सम्पन्न करने में अधिक सुविधा होती है। मन की इस गति को जानकर मनुष्य चाहे उसे सद्कर्मों में लगाये अथवा बुरे कर्मों में, यह मनुष्य की स्वतंत्रता है किंतु यह स्वतंत्रता भी एक प्रकार से पराधीनता है क्योंकि यह मन पूर्व संस्कारों से ग्रसित है तथा समाज का वातावरण उसे वह कार्य करने देना नहीं चाहता जो वह चाहता है बल्कि जिस वातावरण में वह पलता है, उस समाज का वातावरण ही उसे उसी प्रकार का कार्य करने को बाध्य करता है जिससे मन का स्वतंत्र चिंतन एवं विकास रूक जाता है तथा वह उस वातावरण के अनुकूल ढल जाता है। उसे अच्छे-बुरे, सत्य-असत्य का कोई ज्ञान नहीं रहता। इसी कारण यह अन्य सांसारिक व्यक्तियों की भाँति जीवन भर दुःखी ही बना रहता है।

मनुष्य के मन की ये दबी हुई वासनाएँ, इच्छाएँ आदि अपने प्रकटीकरण का मार्ग खोजती रहती हैं तथा सामाजिक वातावरण उन्हें निरंतर दबाने का प्रयत्न करता है जिससे व्यक्ति में कुण्ठाएँ उत्पन्न होती है तथा इससे उसके भीतर एक अज्ञात मानसिक संघर्ष उत्पन्न हो जाता है जिससे उसके मन एवं शरीर में सन्तुलित ऊर्जा प्रवाह में गड़बड़ी हो जाती है।

यही गड़बड़ी विभिन्न प्रकार के मानसिक एवं शारीरिक रोगों के रूप में प्रकट होती है। अज्ञात मानसिक संघर्ष का पहला परिणाम अकारण चिन्ता अशान्ति और भय के रूप में होता है। बाद में ये रोग और भी जटिल रूप धारण कर शारीरिक रोगों के रूप में प्रकट होते हैं। ठण्च्ण्ए माइब्रेन, कब्ज, दमा, हृदय रोग, पेट के रोग आदि इन्हीं का प्रकट रूप है। शारीरिक व्याधियों व रोगों में अधिकांश मन की ही उपज है।

४. मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ध्यान का मन पर प्रभाव :

मानसिक क्रियाओं का शरीर के श्वास और हृदय तन्त्र पर विशेष प्रभाव पड़ता है। कोई शुभ समाचार सुन कर हार्ट अटैक हो जाना, अशुभ समाचार से 'रक्तचाप' में अंतर हो जाना, 'यौन-क्रियाऐं' में श्वास गति में वृद्धि हो

जाना, किसी से लड़ाई होते देख कर व्यक्ति के हाथ-पैर चल उठना आदि के बहुत-से उदाहरण इसके प्रमाण है। मानसिक क्रियाओं के नियंत्रण के लिये यम-नियमों के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के अभ्यास अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अप्रमाद, सन्तोष, स्वाध्याय आदि कराये जाते हैं।

शरीर में स्वनियंत्रित तन्त्रिका तन्त्र की मूल संरचना एवं क्रिया विधि :

शरीर के भीतर कुछ ऐसी भी तंत्रिकाएँ हैं जिनकी क्रियाओं का संबंध मस्तिष्क से नहीं रहता, परन्तु ऐसी तंत्रिकाएँ केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र से ही उत्पन्न होती हैं। क्रियाओं की भिन्नता के कारण वह एक अलग भाग बन जाता है। इस भाग की तंत्रिकाएँ हमारे मस्तिष्क को न तो सूचना ही भेजती है और न तो मस्तिष्क से कोई सूचना ग्रहण करती हैं। इनकी क्रिया स्वतः होती है। फुफ्फुस, हृदय की धड़कन, आमाशय की पेशियों में संकुचन तथा प्रसरण, वृक्क, मूत्राशय, गर्भाशय आदि की क्रियाएँ हमारी इच्छाओं द्वारा नहीं होती। वे स्वतः कार्यरत् रहती हैं। इनको नियंत्रित करने वाली तंत्रिकाओं का मस्तिष्क के केन्द्रों से कोई संसर्ग नहीं रहता।

आन्तरिक अंगों को नियंत्रित करने वाली तंत्रिकाओं का स्वतंत्र समूह होता है, जिसे एक पृथक, मंडल के रूप में रखा गया है। इस तंत्र में भी तंत्रिका कोशिका की गंडिकाएँ तथा तंतु होते हैं। यह तंत्र केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र के तंअुओं द्वारा संबंधित रहते हुए भी स्वतंत्र कार्य करता है, इसीलिए इसे स्वायत्तशाषी तंत्रिका-तंत्र कहा जाता है। क्रियाओं तथा रचना के आधार पर इस तंत्र को दो भागों में विभाजित किया गया है-

अनुकम्पी अनुभाग :

अनुकंपी तंत्र को 'वक्ष-कटि-विभाग' भी कहा जाता है; क्योंकि इसकी गुच्छिकाएँ के कटि और वक्ष खंडों के धूसर द्रव्य में से निकलती हैं। यदि वक्ष तथा उदर को खोल कर देखा जाए तो यह प्रतीत होगा कि पृष्ठवंश के दोनों ओर श्वेत रंग की छोटी-छोटी गंडिकाओं की लंबी श्रृंखला निकाली हुई है, जो कपाल के नीचे से प्रारंभ होकर अनुत्रिकास्थि के अन्त तक चली गई हैं। ये गंडिकाएँ माला की तरह लटकी रहती हैं। मेरूरज्जु के दोनों ओर गुच्छिकाओं की इस श्रृंखला को 'अनुकम्पी श्रृंखला' कहते हैं। गंडिकाएं आपस में तंत्रिका तंतुओं द्वारा संबंधित रहती है और प्रत्येक गंडिका से तंतु निकल कर सुषुम्ना से मिले रहते हैं। ऐसे तंतुओं को 'गंडिका पूर्व तंतु' कहते हैं। इस प्रकार कशेरूकों के पार्श्व में २२ गंडिकाओं की एक-एक श्रृँखला दाहिनी तथा बायीं दोनों ओर स्थित हैं। इन्हें 'पार्श्व कशेरूकी गंडिकाएं' कहते हैं। इन गंडिकाओं से गंडिका पश्च तंतु निकलते हैं जो रक्तवाहिकाओं के साथ मिल कर शरीर के विभिन्न अंगों में तंतु के रूप में फेले रहते हैं। इन गंडिकाओं तथा उनके तंतुओं को 'अनुकंपी तंत्रिका' कहते हैं।

मेरूरज्जु से निकलने वाले तंतु धूसर भाग के पार्श्व श्रृंगों में स्थित कोशिकाओं से अक्षतंतु के रूप में चमकीले तथा श्वेत रंग के होते हैं। इन्हें 'श्वेत संयोजनी तंतुकाएं' कहते हैं। कुछ तंतु गंडिका से निकल कर मेरू-तंत्रिका में चले जाते हैं। ये कुछ मटमैले धूसर रंग के होते हैं, जिन्हें 'धूसर संयोनी तंतुकाएं' कहते हैं। वास्तव में अनुकंपी तंत्र में दो गंडिकायुक्त रज्जु का सूत्र रहता है, जो खोपड़ी के आधार से कशेरूकदंड (मेरूदंड) के अग्र भाग से होते हुए नीचे की ओर श्रोणि में अनुत्रिक के विपरीत भाग में एकान्त गंडिका के रूप में समाप्त होता है। गंडिकाएं जोड़े के रूप में व्यवस्थित रहती हैं, जिनका विवरण इस प्रकार रहता है -

ग्रीवा में : तीन जोड़े ग्रीवा गंडिका
वक्ष में : ग्यारह जोड़े वक्षीय गंडिका
कटि में : चार जोड़े कटि गंडिका
श्रोणि में : चार जोड़े त्रिक गंडिका
अनुत्रिक के अग्रभाग में : एकान्त गंडिका।

उपर्युक्त रूप में २२ जोड़ी गंडिकाएं व्यवस्थित रहती हैं, जो केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र से मेरूरज्जु के माध्यम से जुड़ी रहती हैं। अन्य अनुकंपी गंडिकाएँ अपने तंतुओं द्वारा इन्हीं दोनों गंडिकायुक्त रज्जु से जुड़ी रहती हैं और अनुकंपी जालिका बनाती है।

१. हार्दिकी जालिका : यह हृदय के आधार के पास रहती है और अपनी शाखा हृदय तथा फेफड़ों में फैलाए रहती है।
२. कुक्षि जालिका : यह आमाशय के पृष्ठ भाग में रहती है और आमाशयिक गुहा में फेली रहती है।
३. अधोजठर जालिका : यह त्रिक के अग्रभाग में व्यवस्थित और श्रोणि में फैली रहती है।

कार्य :

अनुकंपी तंत्रिकाओं द्वारा अनेक अंगों की क्रियाओं का नियंत्रण तथा नियमन होता है। इनकी क्रियाएं अधिक हैं। त्वचीय तंत्रिकाओं के साथ मिल कर ये त्वचा की अनैच्छिक पेशियों से क्रिया करवाती हैं। त्वचा स्थित रक्त-वाहिकाएं इनकी सक्रियता से ही संकुचित होती है और हृदय, मस्तिष्क तथा पेशियों को अधिक रक्त मिलता है, परिणामस्वरूप रक्त का दाब बढ़ जाता है। स्वेद ग्रंथियशें में अधिक स्वेद बनता है। उदर के भीतर के अंगों में अंत्रानुगा तंत्रिकाओं के साथ पहुँच कर अंत्रियों की गति का नियमन करते हैं। इसके द्वारा ही यकृत में ग्लायकोजिन बनता है, फिर वह ग्लूकोजह में परिवर्तित हो जाता है। पाचकक्षेत्र की चरता और साथ अनुकंपी आवेगों से घटता है। इसके ही आवेगों से हृदय की गति बढ़ती है। मूत्राशय की भित्तियां ढीली पड़ती हैं तथा संवरणी पेशी संकुचित होती है। श्वसन की दर भी बढ़ जाती है।

१. स्वायत्तशायी तंत्रिका तंत्र :

अधिवृक्क ग्रंथियों में 'ऐड्रिनेलिन' नामक रसायन इसकी क्रिया से ही बनता है, जिससे शरीर के ताप का नियंत्रण तथा नियमन होता है। इस रसायन के साथ मिलकर सहायक तंतुओं को क्रिया यकृत पर होती है, जिससे रक्त में ग्लूकोज की मात्रा बढ़ जाती है ओर जिसका प्रभाव रक्तवाहिनियों पर पड़ता है। यह रक्तवाहिनियों के भीतर रक्त तथा उनके चारों ओर ऊतकों में उपस्थित जल की मात्रा का नियमन करता है। जब ऊतकों में जल की कमी होती है तब रक्त से जल ऊतकों में चलता जाता है। जब ऊतकों में जल की मात्र अधिक होती है, तब जल ऊतकों से रक्त में चला आता है। आवश्यकता पड़ने पर अवसर के अनुकूल शरीर में शक्ति आ जाती है। यह शक्ति इसी रसायन तथा अनुकंपी तंत्रिका की क्रिया से उत्पन्न होती है। प्रायः यह देखा जाता है कि किसी के आक्रमण करने पर हम आक्रमणकारी का विरोध करने को तैयार हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में शरीर की पेशियां तन जाती है, रक्त-संचार बढ़ जाता है, मुख लाल हो जाता है, त्वचा में रोमहर्ष हो जाता है और नथुने फूल जाते हैं आदि। यह सब अनुकंपी तंत्रिका की सक्रियता के फलस्वरूप ही होता है।

परानुकंपी अनुभाग :

इस तंत्र को 'कपाल तंत्रिका विभाग' भी कहते हैं; क्योंकि इसकी गुच्छिका तंत्रिका-कोशिकाएं, मस्तिष्क और मेरूरज्जु के त्रिक खंडों में पाई जाती है। इसके दो भाग हैं- १. ऊर्ध्व और २. अधो। ऊर्ध्व भाग के सूत्र मध्य मस्तिष्क, सेतु और मेरूशीषर्प के विशेष केन्द्रों से निकलते हैं। अधो भाग के तंतु त्रिक प्रान्त में स्थित मेरू के तृतीय, चतुर्थ और पंचम खंडों में स्थित कोशिकाओं से निकलते हैं। मस्तिष्क से जो इसके सूत्र निकलते हैं, वे अलग तंत्रिका के रूप में नहीं रहते। इनके तंतु तीसरी, सातवी और दसवीं कपाल-तंत्रिका के साथ निकलते हैं।

इन तंतुओं का अन्त किसी गंडिका या जालिका में होता है। किन्तु, दसवीं या वेगस के तंतु शरीर से बहुत दूर-दूर तक जाते हैं। सबसे ऊपर मध्य मस्तिष्क से आने वाले तंतु नेत्र-चालकी या तृतीय कपाल तंत्रिका के केन्द्र से निकलते हैं और परितारिका में समाप्त हो जाते हैं। इसके द्वारा ही उत्तेजनाएं परितारिका में पहुंचती हैं, जिससे पेशियों में संकुचन होता है और नेत्र का तारा संकुचित तथा प्रसारित होता है। इसी प्रकार सेतु में स्थित कोशिकाएं आनन-तंत्रिका दो शाखा में होकर जिव्हाधर और उपजंभिका ग्रंथियों के पासा स्थित गुच्छिकाओं में चले जाते हैं तथा वहाँ से लार ग्रंथियों में पहुंच कर वहाँ की रक्त नलिकाओं को प्रसारित करते हैं ओर ग्रन्थियों के स्त्राव को बढ़ाते हैं।

वेगस-तंत्रिका का शरीर में अधिक दूर तक विस्तार रहता है। इसमें अधिकतर परानुकंपनी तंतु होते हैं। मेरूशीर्ष से इसके पूर्व गंडक तंतु तंत्रिका के रूप मं धमनी और शिरा के साथ-साथ ग्रीवा से होते हुए वक्ष में पहुंचते हैं, जहाँ से ये फुफ्फुसीय जालिका में फेले रहते हैं। वहाँ से इसके तंतु वायु-प्रणालिकाओं की भित्तियों में जाते हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि पूर्व गंडक तंतु हार्दिकी जालक तक तथा फिर जालक से तन्तु हृदय में जाते हैं। फिर यह तंत्रिका उदर में चली जाती है, जहाँ से इसके तंतु आमाशय, क्षुद्रान्त्र, वृहदांत्र, यकृत, पित्ताशय, पित्तनलिकाओं तथा अग्नाशय में फैले रहते हैं। इन तन्तुओं की जालिका समस्त प्रान्त की भित्तिों में रहती है। पूर्वगंडिका-तंतु जालिका तक जाते हैं। पश्चगंडिका-तंतु अंगों की भित्ति में जाकर वितीर्ण हो जाते हैं और अंगों का क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं।

त्रिक तंत्रिका वृहदांत्र के शेष भाग और श्रोणि में स्थित अंगों का नियंत्रण करती है। यह तंत्रिका मेरूरज्जु के दूसरे, तीसरे और चौथे कटि-खंड से अग्र मूलों के साथ बाहर निकलती है। मूलों से पृथक् होने के बाद यह आपस में मिल कर श्रोणिगा-तंत्रिका बनाती है। इससे वृहदांत्र का शेष दो-तिहाई भाग और मूत्राशय के प्रेरक तंतु मिलते हैं। इसके तंतु मूत्राशय तथा गुदा की पेशियों के संकुचन को नियंत्रित करते हैं।

कार्य :

परानुकंपी तंत्र के ऊर्ध्व भाग के तंतुओं की उत्तेजना के फलस्वरूप नेत्र का तारा संकुचित होता है, कर्णमूल, जिव्हाधर तथा अधोहनवीय ग्रंथियों से अधिक सुख उत्पन्न होता है। इससे हृदय की गति मन्द होती है तथा श्वासनलिकाओं का संकुचन होता है। आमाशय, आंत्र तथा अग्नाशय से अधिक भाव बनता है। त्रिक से निकलने वाले तंतुओं को उत्तेजना से मलाशय, गुदा आदि का संकुचन बढ़ता है। इस तंत्र द्वारा ऐसिटिलकोलीहन नामक रासायनिक पदार्थ उत्पन्न होता है। तंत्रिका कोशिकाओं ओर अक्षतंतु के संगम स्थानों के द्वारा जो उत्तेजना एक ओर से दूसरी ओर जाती है, वह एसिटिलकोलीन के ही कारण होती है। ऐच्छिक पेशियों का संकुचल भी इसके कारण ही होता है। नेत्र की परितारिका, लार ग्रंथियां, आमाशय, अंत्रियां, मूत्राशय आदि में जाने वाले परानुकंपी तंतु इस रासायनिक पदार्थ को उत्पन्न करते हैं।

अनुकंपी तथा परानुकंपी दोनों तंत्रों में गंडिकापूर्व तथा गंडिकापश्च तंतु होते हैं। परानुकंपनी के गंडिकापूर्व तथा गंडिकापश्च तंतु परानुकंपनी होते हैं। अनुकंपी में भी गंडिकापूर्व तथा गंडिकापश्च अनुकंपनी होते हैं। शरीर के जिन अंगों में इन दोनों भागों के तंतु जाते हैं, वहाँ की क्रिया एक-दूसरी के विपरीत होती है। इसका तुलनात्मक विवरण इस प्रकार है-

शरीर के अंग	**अनुकंपी का प्रभाव**	**परानुकंपनी का प्रभाव**
हृदय आहारनाल	नाड़ी-स्पंदन-गति बढ़ना, आंत्र-गति को शिथिल करना	नाड़ी-गति मंद करना गति तीव्र करना

२. मन द्वारा स्वायत्तशाषी तंत्रिका तंत्र के नियोजन की प्रक्रिया।

आंखें पाचक क्षेत्र त्वचा तथा उदर गुहा की रक्त-प्रणाली पेशियों की रक्त-प्रणाली	परितारिका प्रसारित करना चरता और स्त्राव घटाना संकुचित करना प्रसारित करना।	प्रकुंचित करना बढ़ाना प्रसारित करना संकुचित करना

मन द्वारा स्वनियंत्रित तंत्रिका तंत्र के कार्यों का नियोजन :

शरीर के समस्त महत्त्वपूर्ण आंतरिक अंग स्वायत्तशाषी तंत्रिका तंत्र के अनुकंपनी ओर परानुकंपनी अनुभागों से जुड़े हैं, यह इसकी रचना से स्पष्ट दृष्टिगोचर है। अनुकंपनी ओर परानुकंपनी दोनों अनुभागों की तंत्रिकाएं क्रियावाही प्रकृति की होती हैं इसलिए ये केवल आदेश इन अंगों तक ले जाती हैं पूर्व में यह धारणा थी कि स्वायत्तशाषी तंत्रिका तंत्र बिल्कुल स्वतंत्र रूप से कार्य करता है। इसके कार्यों पर मस्तिष्क या सुषुम्ना का कोई

हस्तक्षेप नहीं होता। परंतु नवीनतम अन्वेषणों एवं शोध के परिणाम स्वरूप इस धारणा में परिवर्तन हो गया है। स्वतंत्र रूप से कार्य करते हुए भी इसके कार्यों का नियोजन मस्तिष्क के द्वारा ही किया जाता है।

आवश्यकतानुसार शरीर क्रियाओं को चलाने के लिए वैसे तो शरीर के समस्त अंग निर्धारण मानक गति से काम करते ही रहते हैं। उनकी कार्य गति में परिवर्तन किन्हीं बाह्य उद्दीपनों के कारण ही होता है और बाह्य उद्दीपन इन आंतरिक अंगों तक स्वायत्तशाषी तंत्रिका तंत्र द्वारा ही पहुँचते हैं। इसका एक अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू भी है कि कोई भी बाह्य, उद्दीपन, सन्देश या सूचना जिस रूप में ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा प्राप्त की जाती है। उसी रूप में इन अंगों तक न पहुँच कर उसकी प्रतिक्रिया के रूप में पहुँचते हैं। प्रतिक्रिया तैयार करने का गुरूत्तर दायित्व केवल मस्तिष्क का होता है। इसलिए यह भी सिद्ध करता है कि स्वायत्तशाषी तंत्रिका तंत्र के द्वारा किए जाने वाले कार्यों का नियोजन मूलतः मन (मस्तिष्क) के द्वारा ही किया जाता है।

नलिका विहीन ग्रंथियों से चक्रों का अंतर्सबंध :

मानव शरीर में दो प्रकार की ग्रंथियाँ होती है। : एक को नलिका वाली ग्रंथियाँ कहते हैं एवं दूसरे प्रकार की ग्रंथियों को नलिका विहीन ग्रंथियाँ कहते हैं। हमारी इन अंतःस्त्रावी ग्रंथियों के भीतर से विभिन्न प्रकार के रसों का स्त्राव होता रहता है, जिन्हें हारमोन्स कहते हैं।

प्रमुख ग्रंथियाँ –

पीनियल ग्रंथि : पीयूष ग्रंथि सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है, जो मनुष्य के शरीर की अन्य ग्रंथियों को नियंत्रित और संतुलित करती है। इस कार्य में पिट्यूटरी ग्रंथि भी इसे सहायता करती है। यह ग्रंथि सिर के ऊपरी भाग में स्थित है, जो सहस्रार चक्र से संबंधित है। इसे मानव चेतना का सर्वोच्च स्थान माना गया है। यह ग्रंथि लाल रंग की गुठली के आकार की होती है।

१. **पिट्यूटरी ग्रंथि :** यह सिर में पीनियल ग्रंथि के नीचे स्थित है। इसके anterior तथा posterior दो lobes होते हैं। यह अन्य सभी नलिका विहीन ग्रंथियों की क्रियाओं को नियमित करती है तथा उनमें सन्तुलन स्थापित करती है। इसका आध्यात्मिक क्षेत्र में बहुत महत्त्व है, जिसकी चर्चा अलग से विस्तार से की जाएगी। इस ग्रंथि के प्रमुख तीन भाग होते हैं। इसका पिछला भाग शरीर की हड्डियों तथा मांसपेशियों के नियंत्रण का काम करता है। पिछले भाग के निष्क्रिय होने से आदमी की लंबाई में बढ़ोतरी रूक जाती है और वह बौना हो सकता है। इसके विपरीत इसके ज्यादा सक्रिय होने पर व्यक्ति की लंबाई ज्यादा बढ़ जाती है। यह ग्रंथि शरीर में जल के सन्तुलन को भी बनाए रखती है। यह ग्रंथि व्यक्ति के त्वचा के रंग को भी प्रभावित करती है और इससे निकलने वाले हार्मोंस स्त्रियों में दुग्ध निर्माण तथा प्रजनन कार्य में भी सहायक होते हैं। योग की भाषा में इसे आज्ञा चक्र भी कहा जाता है। पिट्यूटरी ग्रंथि को मास्टर ग्लैंड भी कहते हैं। इससे ९ प्रकार के हार्मोंस का स्त्राव होता है।

२. **थायराइड ग्रंथि :** यह गले में स्वर यंत्र के ठीक नीचे होती है। इस ग्रंथि से ही थायराक्सिन नामक हार्मोन का निर्माण होता है, जो हमारे रक्त में मिलकर शरीर के हर कोष तक पहुँचता है। व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ रखने में बड़ा सहायक होता है। थायराईड की क्रियाओं को सन्तुलित करने के लिए गले की नसों का व्यायाम बहुत ही लाभकारी माना गया है। मानसिक भावों जैसे भय, चिंता, क्रोध, तनाव के कारण कभी–कभी यह ग्रंथि अपना कार्य ठीक से नहीं कर पाती हैं, जिससे व्यक्ति का स्वास्थ्यस खराब होने लगता है।

३. **पैरा–थायराइड ग्रंथियां :** इनकी स्थिति थायराइड ग्रंथियों के पीछे होती है। इनकी संख्या ४ है। वे ग्रंथियां भी शरीर के लिए आवश्यक हार्मोंस का निर्माण करती है। ये ग्रंथियां शरीर में कैल्शियम के स्तर को भी बनाए रखती हैं। ये मटर के दानों के आकार की होती है। इनमें पैरा–थार्मोन नामक हारमोन निकलता है, जो शरीर में कैल्शियम और फासफोरस के वितरण को नियमन करता है।

४. **थाइमस ग्रंथि :** यह ग्रंथि १२ वर्ष की अवस्थ तक रहती है तथा बाद में स्वतः ही धीरे–धीरे समाप्त हो जाती है। यह ग्रंथि दोनों फेफड़ों के मध्य हृदय के समीप स्थित होती है। इसका मुख्य कार्य रक्त के श्वेत कणों का निर्माण करना तथा शरीर का विकास करना है। यह एंटी बॉडी और टी–लिम्फोंसाइटस तैयार करती है।

५. **पैंक्रियाज ग्रंथियां :** इन ग्रंथियों से इंसुलिन नामक हारमोन निकलता है, जो मानव शरीर के रक्त में शर्करा की मात्रा को नियंत्रित करता है। पैंक्रियाज ग्रंथि अमाशय के नीचे स्थित होती है।

६. **एड्रेनल ग्रंथियां :** मनुष्य के शरीर में स्थित दो गुर्दों के ऊपर एक-एक एड्रेनल ग्रंथि होती है। इनसे पांच प्रकार के प्रमुख हारमोंस निकलते हैं, जिनसे शरीर में रक्तचाप का नियंत्रण, गुर्दों द्वारा लवण के निष्कासन का नियंत्रण, यौन ग्रंथियों द्वारा निकलने वाले यौन हारमोंस की कमी को पूरा करने तथा ऊर्जा देने वाले ग्लेकोज के उत्पादन आदि का नियंत्रण होता है। प्रत्येक ग्रंथि दो भिन्न भागों, कार्टेक्स और मेड्यूला से मिलकर बनती है। कार्टेक्स से मिनरिलों एड्रीनोकार्टिकोआयड्स, ग्लूकोकार्टिको आयड्स और सेक्स हार्मोन निकलते हैं तथा मेड्यूला से दो महत्त्वपूर्ण हारमोन एड्रेनलीन और नारएड्रेनलीन निकलते हैं।

७. **डिम्ब ग्रंथियां :** ये ग्रंथियां केवल महिलाओं में होती हैं। इनकी संख्या दो हाती है। ये ग्रंथियां एस्ट्रोजन्स और प्रोजेस्ट्रीन नामक हारमोंस का निर्माण करती हैं। ये हारमोंस स्त्रियों में मासिक धर्म की नियंत्रित करते हैं तथा गर्भधारण में भी सहायक होते हैं।

८. **अंड ग्रंथियां :** ये ग्रंथियां केवल पुरूषों में होती हैं। इनकी संख्या दो होती है एवं अंडकोश में स्थित होती है। इनके द्वारा टेस्टोस्टेरान नामक हार्मोन का निर्माण होता है, जो शुक्राणुओं की उत्पत्ति को नियंत्रित करता है।

इस प्रकार मानव शरीर में स्थित ये ग्रंथियां और इनसे निकलने वाले हार्मोंस का बड़ा ही महत्त्व होता है। यद्यपि इन नलिका विहीन ग्रंथियों या अंतःस्त्रावी ग्रंथियों से निकलने वाले हार्मोनों का शरीर संबंधी क्रिया-कलापों से सीधे तौर पर कोई संबंध नहीं होता है। उदाहरण के लिए न तो ये हृदय की तरह रक्त-शोधन का काम करती हैं और न तंत्रिका-तंत्र की तरह मन या मस्तिष्क का संचालन कार्य करती हैं। इनका काम मुख्यतः रक्त में कभी-कभी रस प्रवाहित करना होता है, फिर भी इनके द्वारा उत्पन्न ये रस मानव शरीर पर अपना चमत्कारिक प्रभाव तो डालते ही हैं।

अमेरिका के चिकित्सा शास्त्री डाद्यॅ. हार्वे कुशिंग ने अंतःस्त्रावी ग्रंथियों, खासकर मस्तिष्क स्थित पीयूष ग्रंथि पर गहन शोध कार्य किया है। उनका मानना है कि व्यक्ति का लम्बा होना या ठिगना होना, पीयूष ग्रंथि की अति-सक्रियता या कम-सक्रियता का ही परिणाम। इसी प्रकार गले के पासा कंठ ग्रंथि (थायराइड ग्लैंड) पर भी शोध कार्य किए गए हैं। इस ग्रंथि से थायराक्सिन नामक हार्मोन निकलता है गले में श्वास नली के पास स्थित लाल रंग की तितली सरीखी इस ग्रंथि से भी निकलने वाले हार्मोन के असंतुलन से शरीर में कई तरह की व्याधियां उत्पन्न हो जाती है। यह ग्रंथि असामान्य रूप से बढ़ जाए, तो व्यक्ति घेंघा रोग का शिकार हो जाता है। भोजन में आयोडीन की कमी होने से थायराइड ग्रंथि में दोष उत्पन्न हो जाते हैं। शरीर के लिए इन ग्रंथियों का महत्त्व तो है ही, इनका महत्त्व योग में भी बहुत अधिक माना गया है। इन ग्रंथियों को चक्रों से भी संबंधित माना जाता है, जिसे निम्न प्रकार से समझा जा सकता है :

शरीरशास्त्र की मान्यता के अनुसार	योगशास्त्र की मान्यता के अनुसार
पीनियल ग्रंथि	सहस्रार चक्र
पिट्यूटरी ग्रंथि	आज्ञा चक्र
थायराइड और पैरा-थायराइड ग्रंथि	विशुद्धि चक्र
थाइमस ग्रंथि	अनाहत चक्र
पैंक्रियाज ग्रंथि	मणिपूर चक्र
एड्रीनल ग्रंथि	स्वाधिष्ठान चक्र
पुरूषों में अंड ग्रंथियाँ तथा स्त्रियों में डिंब ग्रंथियाँ	मूलाधार चक्र

भौतिक शरीर में स्थित इन ग्रंथियों का अंतसंबंध सूक्ष्म शरीर में स्थित चक्रों से जोड़ा जाता है। शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने में इनकी भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण होती है। हमारा सूक्ष्म शरीर हमारे भौतिक शरीर को पूरी तरह से आवृत्त किए रहता है। अनाहत से ऊपर स्थित चक्रों को ध्रुव तत्त्व या आकाश तत्त्व

कहते हैं और नीचे के चक्रों मणिपूर, स्वाधिष्ठानल एवं मूलाधार को पृथ्वी तत्त्व कहते हैं। मणिपूर चक्र और उसके नीचे स्थित चक्रों की गति धीमी तथा सशक्त होती है, जबकि अनाहत चक्र के ऊपर स्थित विशुद्धि, आज्ञा और सहस्रार चक्रों की गति तीव्र होती है।

यदि हम विश्लेषण करें, तो पाएंगे कि पृथ्वी तत्त्व और आकाश तत्व निम्न प्रकार की शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये दोनों प्रकार की शक्तियां अनाहत चक्र में आकर मिलती हैं। इस प्रकार अनाहत अथवा हृदय चक्र पृथ्वी और आकाश इन दोनों तत्त्वों का संगम सलि है। इस संबंध में यह भी ध्यान रखने वाली बात है कि इन सभी चक्रों का अपना-अपना महत्त्व है। ऐसा नहीं है कि पृथ्वी तत्त्व के चक्र कम महत्त्व के हैं और आकाश तत्त्व के चक्र अधिक महत्त्व के होते हैं। अगर इन चक्रों कें एक भी चक्र असन्तुलित या विकारग्रस्त हो जाता है, तो उसका कुप्रभाव सभी चक्रों पर पड़ने लगता है और हमारी संपूर्ण स्थिति लड़खड़ा जाती है। अतः इन सभी चक्रों का महत्त्व लगभग एक जैसा ही समझना चाहिए।

यदि वास्तव में देखा जाए, तो हमारी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्थिति इन चक्रों के आपसी सन्तुलन और सक्रियता पर ही पूरी तरह से निर्भर करती है। हमारे आन्तरिक भाव और बाह्य परिस्थितियाँ, दोनों ही इन चक्रों की कार्यक्षमता पर प्रभाव डालती है तथा उन्हें प्रभावित करती रहती हैं। जब कोई व्यक्ति काम, क्रोंध, भय, लोभ, निराशा आदि मनोभावों से पीड़ित होता है, तो उसका तत्काल प्रभाव इन चक्रों तथा नलिका विहीन ग्रंथियों, दोनों पर समान रूप से पड़ता है। नकारात्मक विचार इन्हें कमजोर बनाते हैं, जबकि योगासन, प्राणायाम, ध्यान से इन्हें अधिक शक्तिशाली तथा सन्तुलित बनाया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

आसन क्यों और कैसे	ओमप्रकाश तिवारी	कैवल्य धाम लोनावला, २००५
आसन, प्राणायाम, मुद्र बंध	स्वामी सत्यानंद सरस्वती	योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, २००६
आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान	अरूणकुमार सिंह, डॉ. आशीष कुमार सिंह	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, २००४
आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान	अरूणकुमार सिंह, डॉ. आशीष कुमार सिंह	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, २००४
आधुनिक प्रायोगिक मनोविज्ञान	डॉ. प्रीति वर्मा, डॉ. डी.एन. श्रीवास्तव	अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, २०१३-१४
उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान	अरूणकुमार सिंह	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, २०१२
घेरण्ड संहिता	स्वामी निरंजनानंद स्वामी	भारती, मुंगेर
घेरण्ड संहिता	स्वामी दिगम्बरजी	कैवल्य धाम लोनावला
ध्यान दर्शन	ओशो	हिन्दी पॉकेट बुक
ध्यान योग	महोपाध्याय ललितप्रभ सागर	पुस्तक महल, दिल्ली, २००५
ध्यान योग	श्री स्वामी शिवानंद सरस्वती	दिव्य जीवन संघ प्रकाशन, १९८७
ध्यान योग चिकित्सा	नंदलाल दशोरा	रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार
ध्यान साधन	नंदलाल दशोरा	रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, २०११
न्यूरो मनोविज्ञान के मूल तत्व	अरूणकुमार सिंह	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, २००४
परमात्म प्रकाश और योगसार	श्रीमद् रामचन्द्र जैन शास्त्रमाला	श्रीमद् रामचन्द्र जैन शास्त्रमाला
पतंजली योग प्रदीप	ओमानंद तीर्थ	गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत्, २०६३
पातंजली योग दर्शन	आरण्य हरिहरानन्द	मेतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९५३-७४
पातंजलि योग दर्शन	पं. वासुदेव त्रिपाठी	देवराज प्रकाशन, इन्दौर, २००६
प्राणायाम	स्वामी कुवल्यानंद	कैवल्य धाम, लोनावला, २०००
भारतीय दर्शन भाग-१	डॉ. राधाकृष्णन	हिन्दी प्रिन्टिग प्रेस, दिल्ली, १९६६
भारतीय दर्शन भाग-२	डॉ. राधाकृष्णन	सम, सीता प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली, १९६९
भारतीय दर्शन भाग-३	डॉ. एस.एन. दास गुप्ता	राजेस्थान प्रिंटिंग वर्क्स, जयपुर, १९७४

मानव शरीर व शरीर क्रिया विज्ञान	मोहनमूर्ति शाण्डिल्य	राजेस्थान पिपुल्स पब्लिशिंग हाऊस, १९८५
योगासन	स्वामी कुवल्यानंद	कैवल्या धाम लोनावला, १९९२
यौगिक प्राणायाम	डॉ. के.एस. जोशी	ओरियण्ट पेपर बॉक्स, दिल्ली, १९८६
योग दर्शन	विद्यालंकार सुनूता	क्लासिकल पब्लिक कंपनी, १९९५
योग दर्शन	हरि कृष्णदास गोयनका	गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत, २०५५
विवेक चूड़ामणि	श्रीमान् शंकराचार्य विरचित	गीता प्रेस, गोरखपुर
Core Essentional of Anatomyt	Indra Bhargava	Sudha Printing Press, Ag., New Delhi.